CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1.3 VHP

॥ श्रीः ॥

# श्री शिव कोटि आचार्य प्रणीत

# रत्न माला ।

शीती भूतं जगद्यस्य वाचाराध्य चतुष्टयम् ।
मोक्ष मार्गं स पायान्नः शिव कोटि मुनीश्वरः ॥ इति महापुराणम् ।

प्रदायक—

श्रीयुत सेठ लक्ष्मीचन्दजी गुलाबचन्दजी लोंग्या जयपुर ।

प्रकाशक—

पण्डित गौरीलालजी सिद्धांत शास्त्री देहली ।

प्रथमावृति २०००

वीराब्द २४५९ भादवा शुक्ला १३

मूल्य सदुपयोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



## * प्रकाशन *

श्री वीरनिर्वाण संवत् २४५८ ( विक्रम सम्वत १९८९ ) में श्रीशान्तिसागर मुनि संघका वर्षायोग जयपुर में हुवा अनेक श्रावकों के घर आहार दानसे पवित्रित हुवे तथा श्रावकों के कर्तव्य चारित्र को बतानें वाले शास्त्रों का व्याख्यान हुवा उन में श्री शिव कोटि आचार्य कृत इस रत्नमाला का वर्णन श्रीचन्द्रसागर मुनिराज के श्रीमुख से सुनकर लक्ष्मीचन्दजी गुलाबचंदजी लोग्यां को इस आर्ष ग्रन्थके प्रकट करनें की इच्छा हुवी ।

जोकि श्री १०८ चन्द्रसागरजी का हिन्दी किया हुवा भाषा में अनुवाद तथा मेरी (पं० गौरीलाल सिद्धांत शास्त्री की) कठिन पदोंपर की हुवी पञ्जिका सहित थी ।

इनसे समस्त जनता को लाभ पहुँचे तथा लोग्याजी को ज्ञानोपकरण दान का उत्तम फल प्राप्त होवे इसलिये इसकी २००० दो सहश्र प्रति तयार कर भव्य जैन सज्जनों के कर कमलों में भेट की है । जिससे श्री समन्तभद्र स्वामी के प्रधान शिष्य श्री शिवकोटी आचार्य की बनाई हुवी इह रत्नमाला सबको हितकारी बने । तथा इस में बताये हुवे चारित्र रूपी रत्नों की बनी हुवी देदीप्यमान माला से सबके हृदय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सुशोभित होकर उनका अभ्युदय वर्धमान रहै ।

श्रीयुत लक्ष्मीचन्द्र गुलाबचन्द्रजी लोंग्या जयपुर निवासी को जिन्होने इनके प्रकाशन में और इसके वितीर्ण करनेमें निज द्रव्य खर्च किया है उनको सम्यगज्ञान निरन्तर बढता रहे है । इति शम् भूयात् ।

निवेदक—

गौरीलाल सिद्धान्त शास्त्री

नई सडक देहली ।

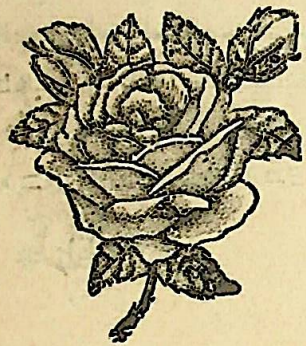

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

# अथ श्री शिवकोट्याचार्य विरचिता

# रत्न माला ।

॥ मंगला चरणम् ॥

सर्वज्ञं सर्ववागीशं वीरं मारमदापहम् ।
प्रणमामि महामोह-शान्तये मुक्तताप्तये ॥ १ ॥

अन्वयः—सर्ववागीशं मारमदापहम् सर्वज्ञं वीरं महामोहशान्तये च मुक्तताप्तये प्रणमामि ॥ १ ॥

अर्थः—मैं शिवकोटी आचार्य सम्पूर्ण स्याद्वाद वाणी के ईश्वर और कामदेव के मदको ( अहंकार ) को नाश करने वाले और समस्त द्रव्य तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पर्यायों के ज्ञाता ऐसे श्री वर्द्धमानस्वामी को बलवान मोहनीय की शांति (दूर करने) के लिये और मोक्षकी प्राप्ति के लिये बारम्बार प्रणाम करता हूं।

विशेषः —यह श्लोक मंगलाचरण रूप है। मंगल उसको कहते हैं जो मम् पापों को गलाये, नाश करे, दूर करे, विघ्न का घात करे, तथा मंग, सुख, कल्याण को लाति कहिये देवे सो मंगल कहलाता है। इस मंगल का आचरण सर्व ही आस्तिक वादी करते हैं इससे अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी का गुणानुवाद पूर्वक स्मरण किया है जिससे उनके प्रति कृतज्ञता और अपनी इष्ट अभिलाषा पूर्ण होवे, संसार में मिथ्यात्व कषाय और काम-देव ने समस्त विष्णु ब्रह्मा महेशादिकों को अपने वश कर लीना है जिससे समस्त प्राणी मात्र ज्ञानावरणादि कर्मों से बन्धकर पराधीन हो रहे हैं। अपने सम्यग्ज्ञानादिक को भूलकर विभाव परिणामों के साथ चतुर्गति संसार में जन्म जरा मरणादि दुखों को पा रहे हैं। अब शुभोदय से उत्तम क्षेत्र उत्तम जाति उत्तम कुल और सत्संगति के साथ मनुष्य शरीर प्राप्त हुवा है उसको



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



फलीभूत करने के लिये रत्नत्रय की सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र प्राप्ति की इच्छा से उन वर्द्धमान स्वामी को वन्दना की है। जिन्होंने मदोन्मत्त कामदेव को भी भस्म कर दिया है इसीसे वे वीतरागी हैं। और समस्त जीव मात्र का हित हो सके ऐसे हितकारी शिक्षा देने वाले शास्त्रों का उपदेश दिया है। इस विशेषण से वे हीतोपदेशक बताये तथा समस्त त्रैलोक्य के त्रिकालवर्ती पदार्थों के ज्ञाता है इससे उनमें सर्वज्ञता बताई है, इस प्रकार आप्त के स्वरूप के धारक भगवान् अर्हंत परमेष्ठी का स्वरूप प्रगट बताया ॥ १ ॥

सरस्वती स्तुति।

सारं यत्सर्व सारेषु वन्द्य यद्वन्दितेष्वपि।
अनेकान्त मयं वन्दे तदर्हद्वचनं सदा ॥ २ ॥

अन्वयः—यत सर्व सारेषु सारं यत् वन्दितेषु अपि वन्द्यम् तत् अनेकान्तमयं अर्हद्व चनम् अहम् सदा वन्दे ॥

अर्थः—जो कि लोकमात्र की समस्त सारभूत वस्तुओं में भी सारभूत



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



है, जो वन्दना किये गयोंमें भी वन्दनीक पूज्य है उस अनेकांत स्वरूप जिन वाणी को सदाकाल वन्दना करुं हूँ।

भावार्थ—लोक में जितने सारभूत पदार्थ है उन में भी जो सारभूत पदार्थ वस्तु है वह जिनवाणी हैं उसी प्रकार जितने वन्दनीय आचार्यादिक हैं उनसे भी जो वन्दनीय है क्योंकि वह युगपत अनेक धर्म धारण करने वाले पदार्थों का कथन करती है जो कि छियालीस गुणधारक सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशी अर्हन्त भगवान के दिव्य वचन स्वरूप है उस स्याद्वादवाणी को नमस्कार करता हूं। क्योंकि नित्य अक्षर स्वरूप स्याद्वाद वाणी ही ऐसी है जो श्रुतज्ञान स्वरूप है जिससे त्रिकाल वर्ती समस्त गुण पर्याय जाने जाते हैं उसीके सप्तमउपासकाध्ययन से कुछ अंशोंको ग्रहण कर श्रावकाचार का वर्णन करना है। इस से उस मंगलमय जिनवाणी को नमस्कार स्वरूप मंगल किया है।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



श्री सिद्ध सैनं गुरुं स्तौति ।

सदावदातमहिमा, सदा ध्यानपरायणः ।
सिद्धसेन मुनि र्जीया-द्भट्टारकपदेश्वरः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सदा वदातमहिमा सदा ध्यान परायणः भट्टारकपदेश्वरः सिद्धिसेन मुनिः जीयात् ॥

अर्थः—निरन्तर निर्मल निर्दोष है कीर्ति जिनकी, निरन्तर धर्म ध्यान में लीन है और उत्तम भट्टारक पद के स्वमी हैं वे सिद्धसेन मुनीश्वर जयवन्त हो मेरे हृदय में सर्वोत्कृष्ट स्वरूप से रहैं ॥ ३ ॥

श्री समन्तभद्रं च गुरुं स्तौति ।

स्वामी समन्तभद्रो मे, ऽहर्निशं मानसेऽनघः ।
तिष्ठताज्जिनराजोद्य, शासनाम्बुधि चन्द्रमाः ॥ ४ ॥

अन्वयः—श्री समन्त भद्रः मे मानसे अहर्निशं तिष्ठतात् कथँ भूतः



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



समन्तभद्रः ? अनघः पुनः जिनराजः पुनरपि अद्यशासनाम्बुधिचन्द्रमाः ॥

अर्थः—भगवान समन्तभद्र स्वामी मेरे मनमें दिन रात निरन्तर विराजमान रहें। कैसे हैं भगवान समन्तभद्र स्वामी ? निर्दोष हैं और कैसे हैं ? सम्यग्दृष्टीयों में दीप्तमान हैं और वर्तमान में आजकल हमारे समयमें जिन शासन रूपी समुद्र को बढानेमें चन्द्रमाही हैं ॥ ४ ॥

( धर्मकथा संगम्यते )

वर्द्धमान जिनाभावाद्भारते भव्य जन्तवः ।
कृतेन येन राजन्ते, तदहं कथयामि वः ॥ ५ ॥

अन्वयः—श्री वर्द्धमान जिनाभावात ( जिनस्य अभावः तस्मात् ) भारते क्षेत्रे भव्यजन्तवः येन कृतेन राजन्ते तत् कृत महम् कथयामि

अर्थः—श्री महावीर अन्तिम ( २४ वें ) तीर्थंकर देव के मोक्ष जाने पर इस भरत क्षेत्र में भव्य जीव जिस पवित्र आचरण से ( धर्म से ) शोभायमान

॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri





होते हैं उस पवित्र आचरण को मैं तुम्हारे लिये कथन करता हूं। श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र देव जो सर्वज्ञ थे और भव्यजीवोंके हितके लिये उपदेश देते थे उन के मोक्ष जाने पर भी इस भरत क्षेत्र में निकट भव्य जीव जिस सदाचार व्रत यम नियम रूप कर्तव्य से स्वर्ग और राज्य वैभव को तथा मोक्ष को प्राप्त करते हैं उसी समीचीन धर्म स्वरूप आचरण का अब वर्णन किया जाता है ॥ ५ ॥

सम्यक्त्वं प्रदधाति ।

**सम्यक्त्वं सर्व जन्तूनां, श्रेयः श्रेयः पदार्थिनाम् ।**
**विना तेन व्रतः सर्वो-ऽप्यकल्प्यो मुक्तिहेतवे॥ ६ ॥**

अन्वयः—श्रेयः पदार्थिनाम् सर्व जन्तूनाम् सम्यक्त्वम् श्रेय,ः तेन विना सर्वोऽपि व्रतः मुक्ति हेतवे अकल्प्यः ॥

अर्थ—अपने लिये कल्याण कारी पदार्थों की चाहना करने वाले जीवों को सम्यक्त्व ही कल्याण कारी है। उस सम्यक्त के विना कितने भी उपवा-



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



सादि व्रत किये जाय वे मोक्ष के साधक नहीं होते ।

भावार्थः—जब तक जीवोंको आत्मा का और इहलोक परलोक का तथा इनके स्वरूप बताने वाले देव गुरु शास्त्र का श्रद्धान नहीं होता तब तक उसके समस्त ही आचार विचार कल्याण कारी नहीं होते न उनको अविनश्वर सुखमयी मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसी से अपने कल्याण चाहने वाले पुरुषों को उचित है कि सच्चे देव सच्चे शास्त्र सच्चे गुरुओं का श्रद्धान करें, जिससे सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होवे ॥ ६ ॥

अथ देवशास्त्रयोर्लक्षणमाह ।

निर्विकल्प श्चिदानन्दः परमेष्ठी सनातनः ।
दोषातीतो जिनो देव, स्तदुपज्ञं श्रुतिः परा ७॥

अन्वयः—यो निर्विकल्पः चिदानन्दः परमेष्ठी सनातनः दोषातीतो जिनो देवः कथ्यते । यत् तदुपज्ञम् सा परा श्रुतिः मता ॥

अर्थः - जो विकल्प रहित है और अनन्त ज्ञान अनन्त सुख हैं जिसमें



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



देवोंने कहा है ।

भावार्थः—ऊपर जो लक्षण बताये हैं उन लक्षण वाले ही देव शास्त्र और गुरु हमारे पवित्र होने में असाधारण निमित्त कारण है। इसलिये उनका श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन के हो जाने पर आत्मा के सर्व ही धर्म समीचीन हो जाते हैं। और वह सम्यग्दृष्टि आत्मा ही उपादेय तत्व बन जाता है वो ही आत्मा सप्तपरमस्थानस्वरूप हो जाता है॥९॥

अथ तस्यैव सम्यग्दर्शनस्य महत्वमाचक्षते सूरयः—

विरत्यासंयमेनापि, हीनः सम्यक्त्ववान्नरः ॥
सुदैवं याति कर्माणि, शीर्णयत्येव सर्वदा ॥ १० ॥

अन्वयः—यः सम्यक्त्ववान् नरः विरत्या अपि संयमेन हीनः स सुदैवम् याति सचैव सर्वदा कर्माणि, शीर्णयति।

वि० आत्मनि दर्शनस्य विद्यमानत्वात पापकर्माणि निर्जीयन्ते नव्यानि च सञ्चियन्ते। अतः सम्यग्दृष्टिः सततं पापकर्माणि

॥१३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



घातयत्येव। सुष्ठु सातिशयं च यद्दैवम् तत् सुदैवम्। याति प्राप्नोति—बध्नातीत्यर्थ।

अर्थः—जो मनुष्य सम्यग्दृष्टि है किन्तु अहिंसादिक व्रतोंसे और इन्द्रियसंयम प्राण संयमोंसे रहित है सोत्ती सातिशय पुण्य को प्राप्त करता है। अर्थात् पुण्य बन्ध के ही आश्रव करता है, और वह मोहनीय, वेदनीय, ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, और अन्तराय इत्यादि पाप कर्मों का प्रति समय जीर्ण शीर्ण करता रहता है।

भावार्थः— जबसे आत्मामें सम्यग्दर्शन होने वाला है या हो जाता है तब से ही वह जीव मोहनीयादि पाप कर्मोका रस समय समय प्रति असंख्यात गुण घटता रहता है और उनका अन्त कोडा कोडी सागर से अधिक स्थितिवाला बन्ध नहीं होने देता है, इसीसे भव्यात्मा अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल से पूर्वही मुक्ति प्राप्त करलेता है, अगर वह व्रत और संयमको धारण कर लेवे तो तीन चार भवमें ही पूर्णतया सर्व कर्मो का नाश कर देता है ॥ १० ॥

॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



भोगभूमिषु तिर्यञ्चोपि जायन्ते ।

सम्यक्त्वस्य विशेषं कथयन्ति ।

अवद्धायुष्क पक्षे, तु नोत्पत्तिः सप्तभूमिषु ।
मिथ्योपपाद त्रितये, सर्व स्त्रीषु च नान्यथा ॥ ११ ॥

अन्वयः—सम्यक्त्ववतः पुरुषस्य अबद्धायुष्क पक्षे सति सप्तभूमिषु मिथ्योपपादत्रितये च सर्व स्त्रीषु चोत्पत्तिर्न अन्यथा न नियमः। व्याख्या—सम्यग्दृष्टयो द्विधा बद्धायुष्का अबद्धायुष्काश्च । येषां सम्यक्त ग्रहणात् पूर्वमेवं जन्मान्तरस्यायुषां बन्धो भूत्ते बद्धायुष्काः। तद्विपरीता अबद्धायुष्काः। तत्र अबद्धायुष्काः सम्यग्दृष्टोय घर्मादिषु सप्तस्वपि नरकभूमिषु न उत्पद्यन्ते तथा अनुत्तमोपादिकेषु । भावन व्यन्तर ज्योतिष्केषु न जायते, तथा च सर्वासु मानुषीषु-तिरश्चीषु न। येषाम् सम्यग् गृहणात् पूर्व बद्ध मायुस्ते बद्धायुष्का स्तेषाम् सम्यग्दृष्टीनाम् उपर्युक्त नियमो न-ते च प्रथम भूमौ नारकाः



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अर्थः—जिन सम्यग्दृष्टी पुरुषों के आगामी आयु बन्ध नहीं हुवा है उनकी उत्पत्ति सातों भूमियों के चौरासी लाख नरकों में और भवन त्रिकोंमें तथा सर्व स्त्री पर्यायों में नहीं होती है। जिनकी आयु सम्यक्त्व उत्पत्ति के पहिले बन्ध चुकी हैं उनके लिये उपर्युक्त नियम नहीं है।

भावर्थः—सम्यग्दृष्टी दो प्रकार के होते हैं एक बद्धायुष्क, एक अबद्धा युष्क। जिनके सम्यक्त्व होनेसे पहिले आग्रिम भव संबन्धी आयुका बन्ध हो चुका है बे बद्धायुष्क है। जिनके आयु बंध नहीं हुवा है वे अबद्धायुष्क है। उनमें अबद्धायुष्क सम्यग्दृष्टिओं का जन्म किसी भी नरक में नहीं होता न तिर्यंच पर्यायों में होता है। न नपुंसक होते न स्त्रीपर्याय में जाते हैं। जिनोंने सम्यक्त्व होने से पहिले ही नरकायु का बन्ध कर लिया हो वे जीव पहिले नरक में ही जावेंगे तथा जिन्होंने प्रथम ही तिर्यंचा आयुका बन्ध किया हो वे भोगभूमिया ही तिर्यंच होवेंगे अन्य नहीं। जिनों ने भवनन्तव्य-न्तर ज्योतिष्क सम्बन्धी देवायुका बन्ध कर लिया है उनकी आयु सम्यक्त्व



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



होनेके निमित्तसे उत्कृष्ट कल्पवासी देवोंकी पर्यायोंमें भोगी जाती है। उत्पाद जन्म तीन प्रकारका होता है एक शय्योपपाद कल्पवासी देवोंका, दूसरा मिथ्योपपाद. भवन त्रिकोंका. तीसरा विलोपपाद नारकोंका, यहांपर चकार ग्रहणसे नपुंसकलिंग और मनुष्योंमें भी नीच जातिमें नीच कुलमें नहीं होते तथा स्वल्प आयु वाले, दरिद्री और हीनांगी नहीं होते यह सब सम्यक्त्वका ही माहात्म्य है।

अथ सम्यक्त्ववतो व्रतिनो जन्मानि प्राह—

महाव्रताणु व्रतयो,-रुपलब्धि निरीक्ष्यते।
स्वर्गेऽन्यत्र न सम्भाव्यो, व्रत लेशोऽपि धीधनैः ॥१२॥

अन्वयः—महाव्रताणुव्रतयोः उपलब्धिः स्वर्गे निरीक्ष्यते अन्यत्र गतौ नदृदृश्यते अतएव धीं धनैः व्रतलेशोपि सम्भाव्यः

॥वि०॥ यद्यपिसदृष्टिर्महान् तथापि महाव्रतानि विना नापवर्ग सुखं लभ्यत अतो यथा शक्ति व्रतानि धारयतु यदि पूर्ण व्रत धारयितु मसमर्थस्तदात दंशमात्रमपि प्रतिज्ञाय पालनीय मिति भावः।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अर्थः—जो सम्यग्दृष्टि महाव्रती या अणुव्रती है वे स्वर्गमें ही जन्म लेते है अन्य गति में नहिं ऐसा ही सर्वज्ञ देवोंने देखा है इसलिये बुद्धिमान पुरुषों को थोडासा भी व्रत ग्रहण करना चाहिये।

भावार्थः—जिनके महाव्रत हैं वे मोक्ष या स्वर्ग पदको प्राप्त करते हैं और जो अणुव्रती हैं वे कल्पवासी महर्द्धिक देव होते हैं जिनके लश मात्र भी व्रत है वे भी देव होते हैं अतएव जो अभ्युदय सुखको चाहने वाले हैं वे अवश्यही महाव्रतों को धारण करे, यदि इतना भी न होसके तो उनको अणुव्रत अवश्य धारने चाहिये ॥ १२ ॥

अथ व्रतानां फलमाह—

संवेगादि परः शान्त-स्तत्वनिश्चयवान्नरः।
जन्तुर्जन्मजरातीत-पदवीमवगाहते ॥ १३ ॥

अन्वयः—यः संवेगादि परः अशांतः तत्वनिश्चयवान् स नरो जन्तुः जन्म जरातीत पदवीम् अगाहते ॥

॥१८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



व्याख्या—संवेग आदौ यस्मिन् स संवेगादिः तस्मिन् परः आसक्त स संवेगादिपरः। सवेग १ प्रशम २ अनुकम्पा ३ आतिक्य ४ प्रभृति भावनासु लीनः दर्शनमोहनीयरहित इत्यर्थः। शान्तः चारित्र मोहनीय रहितः। तत्व निश्चयवान्-तत्वम्-यथार्थस्तस्य यो निश्चयः स विद्यते यस्य स तथा। श्रुतज्ञानी इत्यर्थः। अष्ट प्रवचन मातृका ज्ञानवान् निर्ग्रन्थ इति यावत। स एव नरो जीवो जन्मना जरया च अतीताम् रहितां पदवीं-पदम् अवगाहते प्राप्नोति सिद्ध पदवीं लभते इत्यर्थः। येच महाव्रतिनः सन्ति तैः झटति शिवं साध्यन्ते।

अर्थः—जो संवेगादि भावनामें लीन है कषाय नोकषाय जिनके नष्ट होगये हैं। तथा यथार्थ वस्तु का निश्चय सहित हैं वे मनुष्य प्राणी ही जन्म जरा रहित पदवी को पाते हैं।

भावार्थः—जिनके संवेग प्रशम अनुकम्पा आस्तिक्य भाव मौजूद है वे सम्यग्दृष्टि हैं क्योंकि आस्तिक्य भाव होनेसे देवगुरु शास्त्रका और शुद्ध आत्म



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



के अस्तित्व का अस्तित्व उसके ज्ञानमें प्रतिबिम्बित होजाताहै, शान्त अवस्था तबही होती है जब अन्तरंग और बाह्य दोनों प्रकार का परिग्रहका नाश होलेता है इसीसे वीतराग धर्म ध्यानी शुक्ल ध्यानी है। शुक्ल ध्यानी वही होते हैं जो कमसे कम अष्ट प्रवचन मातृका कहिये पँच समिति तीन गुप्तिका स्वरूप बताने वाले श्रुतके तत्वका निश्चय करने वाले हैं इस प्रकार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रके धारक मनुष्यही उस सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होते हैं जहांसे फिर जन्म मरण नहिं होता, मनुष्य पुरुष ही मुक्तिको पाता है पशु, देव स्त्री पर्यायी जीव तथा नपुंसक प्राणी तद्भव मोक्षगामी नहीं होते ॥ १३ ॥

अथ महाव्रतानां फलं निर्दिश्य अणुव्रतानि स्वरूपयन्ति—

अणुव्रतानि पञ्चैव, त्रिप्रकारं गुणव्रतम् ॥
शिक्षा व्रतानि चत्वारी-त्येवं द्वादशधा व्रतम् ॥१४॥

अन्वय—श्रावकानाम् व्रतम् एवम् द्वादशधा भवति। तत्र च पञ्चैव अणुव्रतानि च त्रिप्रकारं गुणव्रतं च चत्वारि शिक्षा व्रतानि इति

॥ २० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



राग द्वेष मद मोह और काम वासनाओंको बढ़ाने वाले शास्त्रोंका पुस्तकोंका पढना सुनना। ५ प्रमादचर्या, उन्मत्त की तरह पृथ्वी जलादिकन का व्यर्थ दुरुपयोग करना। इन अनर्थ रुप दंडोंका त्याग करना सो अनर्थ दण्ड विरती है। तीसरा भोगोपभोग परिमाण, प्रयोजनीभूत भोग्य और उपभोग्य वस्तुओं में राग भाव घटाने के लिये यावत्जीव तथा कुछ कालके लिये परिमित करना ॥ १६ ॥

अथ शिक्षाव्रतं पादोन श्लोक द्वयेन वर्णयन्ति—

.....शिक्षा व्रतमिदम् भवेत्।
सामायिकं प्रोषधोप-वासोऽतिथिषु पूजनम् ॥ १७ ॥
मारणान्तिक सल्लेख। इत्येवं तच्चतुष्टयम्।
देहिनः स्वर्ग मोक्षैक-साधनं निश्चितक्रमम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—इदं सामायिकं शिक्षा व्रतम् भवेत्। एवम् प्रोषधोप-



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वासोऽतिथिषु पूजनम् मारणान्तिक सल्लेख इति तत् चतुष्टयम् शिक्षा व्रतम् देहिनः स्वर्ग मौक्षक साधनम् भवति कथं भूतम् साधनम् निश्चित क्रमम् ।

पंजिका—समयेन शुद्धात्मना चरति इति सामयिकम् अत्र "विन यादिभ्यष्ठण्" ४। २ । ४६ इति सूत्रेण ठण् त्यः । प्रकृष्ट ओषधिः प्रोषधिः प्रोषधिरिवाचरतीति प्रोषधीयते । प्रोषधीयते इति प्रोषधः । यथा रोग निवृत्तये कटु कषायित क्वाथादीन् भक्षयन्ति तथैव क्षुत्पिपासागदनिवृत्यर्थं ऊनोदरं भोज्यं गृह्यते स प्रोषधः कथ्यते । प्रोषध श्वासौ उपवासः प्रोषधोपवासः । एकस्मिन्नहनि एकस्यां वेलायामुपवासः एकस्यां च वेलायाम् सकृद्भुक्तिः क्रियते स हि प्रोषधोपवासो भण्यते । अतिथयोऽष्टाविंशति मूल गुण धारिणो व्रतिनः । तेषु पूजनम् वैय्यावृत्यकरणं वसतिका प्रदान माहारौषध्युपकरणाति-सर्जनं चातिथिपूजनम् शिक्षाव्रतम् भवति । जीव नोकर्मशरीरयो-



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



रायुर्विच्छेदो मरणम्, तद्द्विविधम् नित्यमरण मंत्यमरणञ्च। अत्र-त्यानाम् सामान्यमनुष्यना मायुरपवर्त्यम्। न जाने कदाऽपव-र्त्स्यतीति सर्वदैव सन्नद्धो भवेदिति कषायाणां सल्लेखनाय कृशी करणाय प्रयत्नो मारणांतिक सल्लेखना शिक्षाव्रतं भवति। अथवा अन्तं च मरणम मरणान्तम् मरणान्ते भवः मारणांतिकः। कषा-यानां शरीराणां च लेखनम् कृशीक्रियते स सँल्लेखः। मारणांतिक श्वासौ सँल्लेख इति मारणांतिकसँल्लेखः अथवा मारणांतिकाय सँल्लेखः मारणांतिक सँल्लेखः स तुर्य शिक्षा व्रतं कथ्यते तदणु-व्रतिभिः सर्वदा विधेय मित्याचार्य विवक्षा वर्त्तते।

अर्थः—यह सामायिक शिक्षाव्रत और प्रोषधोपवास अतिथि पूजन, मारणांतिक सँल्लेख ये चारों शिक्षाव्रत मनुष्यों के लिये स्वर्ग और मोक्षके अद्वितीय साधन हैं जिनका क्रम निर्धारित है।

भावार्थः—जो अणुव्रत धारणकर लेता है उसीके गुणव्रत होते हैं ऊपर



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



कहा ही हैं जो कि गुणोंको अर्थात् अणुव्रतोंको बढावे पोषण करे वे गुणव्रत हैं विना अणुव्रतोंके वे दिगव्रतादिक किसको बढावेंगे उनमें भी प्रथम दिग्व्रत होने पर अनथदण्डोंका त्याग होता है। उसके बाद भोग्य जो कि एक ही बार भोगनेमें आवे जैसे अन्न दुग्धादि और उपभोग जिसे बारबार भोगे जैसे वस्त्राभूषण मकान सवारी स्त्री आदि। इन दोनोंका प्रमाण मर्यादित किया जाय सो भोगोपभोगसंख्यान गुणव्रत है यह तीसरा गुणव्रत होता है अनन्तर चतुर्थ शिक्षा व्रत होवे है इस प्रकार क्रमसे चारों शिक्षाव्रत होते हैं। यहां पर व्रतोंमें मारणांतिक सँल्लेखना भी ग्रहण किया है क्योंकि अन्तिम मरणके समय तक कषायोंकी कृशता निरन्तर बढती जावे अर्थात कषाय भाव घटते जावे जिससे आत्माकी शुद्धता होती रहे इसका शिक्षण अभ्यास निरन्तर बना रहने से ही अन्तिम मरणके समय शरीरादिकों क छुटनेमें रागद्वेष नहीं होते। इस लिये मारणांतिक सँल्लेखना की शिक्षाको बढाते रहना चाहिये। ऐसी आचार्यों की श्रावकोंके लिये विवक्षा है। यह समस्त अणुव्रत और शीलव्रत पाले हुवे सातिशय पुण्यके तथा अपवर्ग के साधक होते हैं।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri





अथऽन्युत्पन्न श्रावकानां बालानां च मूलगुणा-नाचष्टते—

मद्य मांस मधु त्याग,-संयुक्ताणु व्रतानि नुः ॥
अष्टौ मूलगुणाः पञ्चो–दुम्बरैश्चार्भकेष्वपि ॥ १६ ॥

अन्वयः—नुः मद्यमांस मधुत्याग संयुक्ताणु व्रतानि इत्यष्टौ मूल गुणा भवन्ति। अपि अर्भकेषु पञ्चोदुम्बरैस्सह मद्यमांसमधूनाम। त्याग इति अष्टौ मूलगुणा भवन्ति।

पांजकाः—व्युत्पन्नानां चतुराणां सज्जातीयाना मार्यभूमिजाना-महिंसादि देश व्रतानि मद्यादि त्यागस्सहाष्टौ मूलचारित्राणि कथ्यन्ते। क्षेत्रम्लेच्छानाम् कर्मम्लेच्छानाम् ज्ञातिम्लेच्छानाम् चार्य-बालानाम् पञ्चोदम्बर फल त्यागः मद्य मांस मधु त्यागश्चेति मूल चारित्राणि भवन्त्यष्ठौ।

अर्थः—जो चतुर मनुष्य हैं उनके तो मद्य पान त्याग, मांस भक्षण त्याग, मधु भक्षण त्याग ये तीन और अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणु-



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



व्रत परदारनिवृत्ति और परिग्रह प्रमाण ये पांच अणुव्रत ऐसे आठ मूलगुण अर्थात मुख्य चारित्र होते हैं और बालकोंके निमित्त मद्य त्याग, मांस त्याग मधु त्याग और बड़फल, पिप्पलफल, गूलरफल, कठूंबरफल, पिलखन, (अँजीर) इन पांच फलोंका त्याग ये आठ मूल गुण कहे हैं।

विशेषः—जो जाति म्लेच्छ क्षेत्र म्लेच्छ और कर्ममलेच्छ स्त्री पुरुष नपुंसक या नादान आर्य बालक हैं उनके मूलगुण पांच उदम्बर तीन मकारों का त्याग ही है पश्चात वे अणुव्रतादिकों को धारण करे ॥ १९ ॥

मधु उन द्वींद्रिय त्रस प्राणियोंका कलेवर है जिनके नाम कर्म प्रकृतिका भेद मधुर रस नामा प्रकृतिका उदय है। जैसे इक्षु नामक वनस्पति के मधुर रस नाम कर्मका उदय होनेसे मिष्टता है। उन प्राणियोंके कलेवर सिर्फ रुधिर मात्र ही होते हैं। जैसे मत्कुण (खटमल) ज्यूँ कलीलां आदिकोंका। इनकी उत्पत्ति या प्रीति वांसा (पीयावासा) गर्मुत (तृणविशेष) के पुष्पोंमें होती है, जैसे पतंगकी दीपकमें प्रीति होती है। मक्खियां जाकर उन कीटोंको अपने मुख



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



में ( चोंचमें ) लेती है जिसमें वे कीट तो मरजाते हैं उनका कलेवर जो मधुर रुधिर मात्र है वह उनके मुँहमें रह जाता है उसको लाकर अपने छत्तोंमें रखती जाती है लोभ वश खाती तो नहीं हैं इकट्ठा करती रहती हैं। वही शहत उन छत्तोंमें एकत्र होता है। जो उन फूलोंमें उत्पन्न हुवे या आये हुवे त्रस प्राणियों का कलेवर है इससे वह अखाद्य है तथा उसमें उन मक्खियोंके अण्डाकार बच्चे भी मर जाते हैं उनके कलेवर भी उसमें मिल जाते हैं। इससे शहत त्रस जीवों के घातसे मक्खियों द्वारा बनता है। अतएव जैन शास्त्रों में इसको मांस के समान पहलेही त्याज्य बताया है। सोई भगवान समन्तभद्रस्वामीने श्रीरत्न-करण्ड श्रावकाचार में कहा है—

त्रसहति परिहारार्थं, क्षौद्रं पिशितं प्रमाद परिहृतये।
मद्यंच वर्जनीयं, जिन चरणौ शरण मुपयातैः॥

इस करिकामें बताया है कि त्रस हिंसाके परिहारार्थ (दूर करने के लिये) क्षौद्र ( शहत ) का त्याग कराया है जिस प्रकार मांसका त्याग कराया है।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



त्रस घात दूर करने को इस मधु के खाने से त्रसहिंसा चोरी डकैती धोकेबाजी का पाप भी लगता है।

अथ कीदृशं जलं पेयमिति प्रतिपादयन्ति—

**वस्त्रपूतं जलं पेय-मन्यथा पाप कारणम् ॥**
**स्नानेऽपि शोधनं वारि, करणीयं दयापरैः ॥ २० ॥**

अन्वयः—दयापरैः श्राद्धैः वस्त्रपूतं जल पेयम्, अन्यथा पापकारणम् भवेत् अपि स्नाने निमित्ते वारि शोधनम् करणीयम्।

अर्थः—दया में तत्पर ऐसे श्रद्धानी श्रावकों का वस्त्र से छाने हुवे जल को पीना चाहिये ऐसा न करणे पर वह बिना छना हुवा जल पापका साधक) हो जाता है तथा स्नानके निमित्त भी जलको शोधना चाहिये।

विशेष—स्वच्छ सफेद गाढे दोहरे वस्त्रसे जो कि पात्रके मुहसे तिगुणा होवे उसमें छाने हुवे जलसे भोजन तयार करणा और पीने में बरतना और उसकी विनछनी को ( जीवानी को ) उसही जलाशयमें विवेक पूर्वक पहुँचाना



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



ही उत्तम है तथा स्नान भी छने हुवे जल से करे जिससे दया भावों की वृद्धि होवे ॥ २० ॥

अथ जलस्य प्रासुकत्वं कियत्कालमिति वर्णयन्ति—

मुहूर्तं गालितं तोयं, प्रासुकं प्रहरद्वयम् ॥
उष्णोदक महोरात्रं, ततः सम्मूर्च्छिमं भवेत् ॥ २१ ॥

अन्वयः—गालितम् तोयम् मुहूर्तम् प्रासुकम् तोयम् प्रहर द्वयम् उष्णोदकम् अहोरात्रं चासम्मूर्च्छिमं भवति ततः परं सम्मूर्च्छिमम् भवेत्

अर्थ—वस्त्रसे छाना हुवा जल दोय घड़ी तक तथा छना हुवा जल लवंग, एलायची, जायपत्री इत्यादिकोंसे प्रासुक किया हुवा पानी दो प्रहर ( ६ घण्टे तक ) और छना हुवा जल गरम तपाया हुवा चोबीस २४ घन्टे तक निर्जीव रहता है उसके पश्चात् ( मर्यादा के बाद ) सम्मूर्छन जीव सहित होजाता है मर्यादाके अन्दर तीनों प्रकारका जल जलकाय है जलकायिकादिक नहीं है, छना जल सचित योनीभूत है त्यागी सचित्त प्रतिमा व्रत पालने वाला और



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



उससे ऊपर के व्रती प्रासुक तथा गरम ही जल पीते हैं।

अन्यच्च—

तिल तण्डुल तोयं च, प्रासुकं भ्रामरीगृहे ॥
न पानाय मतं तस्मान् मुख शुद्धिर्न जायते ॥ २२ ॥

अन्वयः—अपि च। तिल तण्डुल तोयम् भ्रामरीगृहे प्रासुकम् भवति किन्तु पानाय न मतं तत्र हेतुमाह तस्मात् धान्यमिश्रित तोयात मुखशुद्धिर्न जायते।

अर्थः—और भी प्रासुक जलकी रीति है। तिल या तन्दुलादिका धोवन मिला जल ग्रहस्थके चोके में प्रासुक है भोज्य बनानेके वास्ते। किन्तु पीनेके लिये योग्य नहीं है, क्योंकि उस मिश्रित जलसे मुखकी शुद्धि नहीं होती मुख में अन्नका अँश रहजाता है।

अन्य प्रकारेणापि जलं प्रासुकं भवतीति दर्शयति—

पाषाण स्फोटितं तोयं, घटीयंत्रेण ताडितम् ॥
सद्यः संतप्त वापीनां, प्रासुकं जल मुच्यते ॥ २३ ॥

॥ ३४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



देवर्षीणां प्रशौचाय, स्नानाय च गृहार्थिनाम् ॥
अप्रासुकं परं वारि, महातीर्थज मप्यदः ॥ २४ ॥

अन्वयः—पाषाण स्फोटितं तोयम् च घटी यंत्रेण ताडितम् तोयम् अपि च सँतप्त वापीनाम् सद्यः जलम् देवर्षीणाम् प्रशौचाय प्रासुकम् उच्यते अथ च गृहार्थिनाम् प्रशौचाय स्नानाय च प्रासुकम् उच्यते । परम्=अन्यस्मै पानादये अप्रासुकम् भवति । अदः वारि महातीर्थजम अपि अप्रासुकम् भवेत् ॥

अर्थः—पत्थरों की चट्टानों से टकराया हुवा और घटी यंत्रसे ताड़ित किया हुवा जल तथा गरम वापियोंका ताजा जल साधुवोंको शौच विधान के लिये प्रासुक बताया है तथा ग्रहस्थियोंको भी शौच स्नानके लिये प्रासुक कहा है किन्तु भोजन पानके लिये अप्रासुक ही है । नद नदी सरोवरादि तीर्थों से स्वयम् उत्पन्न हुवा भी हो किन्तु वह जल अप्रासुक ही है ॥

अथ श्रावकाचार एकादशधा प्रतिमान रूपः आचरणीयः—



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



प्रतिमाः पालनीयाः स्यु-रेकादश ग्रहोशीनाम् ।
अपवर्गाधिरोहाय, सोपानन्तीह ताः पराः ॥ २५ ॥

अन्वय—ग्रहेशिनाम् प्रतिमाः एकादश ताः पालनीयाः स्युः। इह ताः प्रतिमाः पराः सन्त्यः अपवर्गाधिरोहाय सोपानन्ति ।

पञ्जिका—प्रतिमीयन्ते चारित्रम् याभिस्ताः प्रतिमाः प्रतिमानानीत्यर्थः । ता एकादशधा दर्शनिकः १ व्रतिकः २ सामयिकः ३ प्रोषध नियमः ४ सचित्तविरतः ५ रात्रि भुक्तिविरतः ६ ब्रह्मचारी ( अनंगविरतः ) ७ आरंभ विरतः ८ परिचित परिग्रहविरतः ९ अनुमति विरतः १० उद्दिष्ट विरतः (उत्कृष्ट) ११ इति भेदात् । अर्थोः द्विधाभिद्यते, वर्गो, ऽपवर्गश्च, तत्र धर्मार्थकामाः त्रयो वर्गाः मोक्षस्तु अपवर्गः।तस्य अधिरोहः इति अपवर्गाधिरोहः तस्मै अपवर्गाधिरोहाय मोक्ष प्रासादस्योपरि प्राप्तये । सोपानन्ति सोपान इव निःश्रेणिरिव आचारन्ति इति सोपानन्ति । इह मनुष्य भवे पराः उत्कृष्टाः ।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अर्थ—ग्रन्थस्थियों के प्रतिमारूप चारित्र ग्यारह हैं। वे आचरण करणे योग्य हैं, उन प्रतिमाओं का चारित्र उत्कृष्ट होता हुवा मोक्ष महल पर चढने के लिये ग्यारा पेडियों की निःश्रेणी ही हैं। उन प्रतिमाओं का स्वरूप इस प्रकार है पाप प्रवृत्तिका रोकना, अथवा पाप प्रवृत्ति से रुकना सो व्रत है। वह दो प्रकार है महाव्रत १ अणुव्रत २। ग्रह त्यागी जनोंकों (महापुरुषों कों) महाव्रत होते हैं और घरमें रहने वाले धर्म, अर्थ, और काम पुरुषार्थको सेवन करने वालोंके अणुव्रत होते हैं। उन अणुव्रतोंके अनेक भेद होते हैं। अन्तरंग चारित्र मोहनीय के प्रत्याख्यानावरण कषाय और वेदनीय के क्षयोपशम की न्यूनता अधिकता के निमित्त से जो वाह्य में तृष्णा का घटाना, सँतोष को बढ़ाना आदि उपासकाध्ययनके कथनानुसुर चारित्रोंकी न्यूनताअधिकता होती है। उसके निमित्तसे उसी अणुव्रत रूप चारित्रके विभागोंका प्रमाण ( नाप ) जिससे की जाती है उसे प्रतिमान कहते है। सो ही श्री अकलंक भट्टने श्री राजवार्तिकमें तृतीय अध्याय के अडतीस में सूत्र की व्याख्या में " लौकिक मान पोढा मानोन्माना वमान गणना प्रतिमान तत्प्रमाण भेदात्। तत्रच पूर्व-



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



मानापेक्षं मानं प्रतिमानं प्रतिमल्ल वत्" अर्थात् लौकिक प्रमाणों के छह भेद बताये हैं उन में पांचमा-प्रतिमान है ( जो पूर्वमान की अपेक्षा रक्खे वह प्रतिमान नामका मान है अर्थात जिससे किसी शक्तिके व्यक्त होनेकी इयत्ता ( इतनी है न्यूनाधिक नहीं ) का निश्चय किया जाय सो प्रतिमान है। इसी को प्रतिमा,पद,स्थान, श्रावकपद निश्रेणि, कक्षा, आदि नामोंसे आचार्योंने कहा है। तथा लोकोतर प्रमाण क चार भेदों में जो भाव प्रमाण बताय है उससे चारित्र मोहनीयके क्षयोपशम जनित भावोंका ( चारित्रों का ) निर्धार जाना जाता है उसको लोकोत्तर भाव प्रमाण कहते हैं। उनके दर्शनिकादि ग्यारह स्थान है जिनका वर्णन समन्त भद्राचार्यने श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार में इस प्रकार बताया है।

## ( १ ) दर्शानिक श्रावक।

जिनेन्द्रदेव, जिनोक्त शास्त्र और निर्ग्रन्थ गुरु का श्रद्धानी है, जिसका आत्मा चतुर्गति भ्रमण स्वरूप संसारके जन्म मरणादिसे भयभीत है, शरीरकी



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



पुष्टि करने वाली पाप वृत्तिको नहीं करता है, जिन भोग, उपभोग, परिभोगों से हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, परस्त्रीरमण, परिग्रह तृष्णा बढे है, उनको हेय ( त्याज्य ) समझे हैं, अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय, साधु इन पांच परमेष्ठियोंके पदको चारित्रको तथा इनकी आज्ञाओंको ग्राह्य मानता है। तथा सम्यक् चारित्र जोकि संसार परिभ्रमणका नाशक यथार्थ मार्ग है। उसकी पक्ष में पहुँच गया हो, अर्थात सम्यकचारित्र की सेनाका सैनिक ( सिपाही ) बन गया हो वह दर्शन प्रतिमाका धारक दर्शनिक श्रावक है। जिसने मद्य त्याग मांस त्याग, और मधु त्याग, और पांच अणुव्रतों को धारण कर लिया है और द्वितीयादि प्रतिमाके चारित्र धारण करने की अभिलाषा वाला है वह पहली प्रतिमा वाला दार्शनिक है।

इसके दान, पूजन, तप शील ये चारों प्रगट होजाते हैं इनका अँकुरा-रोपण उसके होजाता है। जो कि आगेके पदोंमें ( प्रतिमाओं में ) बढ़ता बढ़ता महाव्रत बन जाता है। दर्शनिक श्रावक वही होता है जो कदाचारी नहीं



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



अर्थात जाति द्रोही, कुल द्रोही, राज्य द्रोही, देश द्रोही, और कुटुम्ब द्रोही नहो। द्यूतादिक व्यसनोंमें आसक्त नहो। जात्याचार, कुलाचार, देशाचार का पालक नीतिवान साहसी हो।

## ( २ ) व्रतिक श्रावक।

जो निरतीचार पांचो अणुव्रतोंको तथा तीनों गुणव्रतोंको और शिक्षा व्रतोंको तथा दर्शनिक चारित्रोंको पालन करता है सो व्रतिक है। जिसके माया, मिथ्यात्व, इन तीनों शल्यों का उतना अँश नहीं रहता जिनसे अणुव्रतोंका घात हो सके। इनका पूर्णतः त्याग तो महाव्रती के होता है।

## ( ३ ) सामायिक श्रावक।

जो प्रति दिन प्रातः काल मध्याह्न काल और सन्ध्या समयमें मनोयोग, वचनयोग, काययोग, इनको शुद्ध रक्खे है इनके शुद्ध होनेका प्रयत्न करे है अर्हतादिकोंके स्वरूपके विचारमें मनको उनकी स्तुति वन्दनामें वचनोंको और उनकी मुद्राके धारणेमें कायको लगावे तथा १२ आवर्त ४ प्रणाम चतुर्दिशा सम्बन्धी



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



आदि क्रिया विधान पूर्वक सामायिकके करनेका प्रारम्भ और पूर्णता करे है जितना परिग्रहका प्रमाण किया है तथा परिग्रह जितना विद्यमान है उससे भी उतनी देर के लिये ममत्व को हटा देता है। ( इसीको यथा जात कहते हैं ) तथा उस समय कर्म नोकर्म भावकर्म सहित संसारी जीवका और केवल शुद्ध मुक्तात्मा का विचार इस प्रकार करे है। जिससे उस जन्ममरणादिक संसारके दुःखों से छुडाने वाले चारित्रोंके धारण करणे में प्रयत्न बढता रहे सो सामायिक है।

## (४) प्रोषधानशन श्रावकः।

जो प्रत्येक महिने के चारों पर्वोंमें ( दोनों अष्टमी दोनों चतुर्दशी इन तिथियों में ) अपने शरीर और मानसीक बलके अनुसार न्यूनता अधिकता रहित प्रोषध ( एक भुक्ति ) को नियम पूर्वक करता है, आत्मीक स्वरूप के विचारों में तत्पर रहता है। तथा जिनकी शारीरक शक्ति प्रबल है मन साहसी दृढ़ है। सामायिक स्वाध्याय आदिसे चलायमान नहीं होसकता है



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



वह उपवासोंको भी करे है। तथा तृष्णा घटानेके लिये व्यापारादिक आरंभों का भी त्याग करे है सो प्रोषधानशन श्रावक है।

भगवान समन्तभद्र स्वामीने इसी रत्नकरण्ड श्रावकाचार की एक सौ नवमी कारिकामें "प्रोषधः सकृद्भुक्ति" दिनमें एक बार भोजनको प्रोषध बताया है चारों प्रकारके भोजनों का ( अन्न पान लेह्य खाद्य का ) त्यागना सो उपवास कहा है। जो पूर्व दिनके एक आहारका तथा पर्व दिनके दोनों आहारोंका और अग्रिम दिनके एक आहारका त्याग करना सो प्रोषधोपवास है इसका दूसरा नाम चतुर्थोपवास भी है। इनमें से एक भुक्तिका ग्रहण और एक भुक्ति का त्याग सो प्रोषधानशन चारित्र है। और जो अधिक उपवास करणा है सो अपनी शक्ति और इच्छा पर है।

---

चतुराहारविसर्जन मुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः। सप्रोषधापवासो यदुपोष्यारम्भ माचरति ॥ १०६ ॥ प्रोषध श्रासौअनशनः उपवासः अथवा प्रोषधेन एकभुक्त्यासह अनशनं यस्यसः प्रोषधानशन श्रावकः।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



चतुर्थ और पंचम काल में मनुष्यों का भोजन प्रतिदिन दो बार होताहै एक पूर्वान्ह में दूसरा अपरान्ह में जो पर्व के दिन एक समय तो भोजन करता है एक समय अनशन करता है वह प्रोषधानशन श्रावक है।

चारित्र का विधान, व्रतरूप और शीलरूप दो प्रकार का है। जो यावज्जीव धारण किया जाय वे व्रत हैं इन को यम भी कहते हैं। तथा जो किसी काल की या देश की मर्यादा तक यथा शक्ति धारण किया जाय वे शील हैं इनको नियम तथा उत्तर गुण भी कहते हैं। प्रतिमा रूप चारित्र व्रत रूप ही होता है मरण काल से पहिले छोड़ा नहीं जाता। जिस प्रतिमाधारी श्रावक ने पर्व के दिनों में यावज्जीव प्रोषधोपवास करने की प्रतिज्ञाकी है तो वह कालान्तर में महाव्रती मुनि होने पर प्रोषधोपवास करेगा। और जिसने प्रोषध एक भुक्ति करने की प्रतिज्ञा धारण की है वह मुनि होने पर पर्व दिनों में एक भुक्ति भी करेगा। इसको प्रतिज्ञा भंग का पाप नहीं लगेगा। जैसे किसी श्रावक ने दुग्ध रस का त्याग यम रूप किया है वह महा-



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



व्रती होने पर भी दुग्ध का आहार नहीं लेता।

## ( ५ ) सचित विरत श्रावकः।

वह श्रावक है जिसने इन्द्रिय संयम बढाने के लिये बनस्पति वृक्षादिके मूल १ कन्द २ शाखा ३ करीर ( कोंपल ) ४ शाक (पत्र) ५ पुष्प ६ फल ७ बीज ८ ये आठ अँग हैं। इन को जो कि कच्चा हैं अथवा योनीभूत हैं उन को नहीं खाता है। और सचित जलकायिक जलको तथा लवण ( जोकि ) जल की पर्याय है उसको अचित किये बिना नहीं खावे हैं सो पंचमाणु व्रती श्रावक है। अर्थात् आर्य पुरुष वनस्पति सम्बन्धी चीजों का और जल सम्बन्धी चीजों का आहार करते हैं। किन्तु पँचम प्रतिमाधारी श्रावक इनको अचित करके ही खाता है। वे स्वयँ सूर्यादिक की गर्मीसे कालके निमित्तसे या अन्य मनुष्यों के प्रयत्न से अचित ( प्रासुक ) हो जावे तब ही उन फलादिकों को खावे है अन्यथा नहीं खावे पीवे है। इससे रसना इन्द्रिय का विजय होने से इन्द्रिय संयम होता है भोगोपभोग परिमाण व्रत की वृद्धि



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



७ विनय ८ वैय्यावृत्त्व ९ स्वाध्याय १० व्युत्सर्ग ११ ध्यान १२ इन बारह प्रकार के तपोंको यथा शक्ति आचरता है। पांचों समितियों को पालता है तथा विना शिले हुये एक वस्त्र को धारण कर समस्त प्रकार के वस्त्रादि परिग्रहों का त्याग कर देता है वह उत्कृष्ट अणुव्रती श्रावक एकादश प्रतिमाधारी वानप्रस्थ है।

इन एकादश स्थानों में से आदि के छह जघन्य, सप्तम अष्टम, नवम स्थान मध्यम और अन्त्य के दो स्थान उत्कृष्ट अणुव्रत है। इनको धारण पालन वर्धन करने वाले को आगम में अणुव्रती उपासक कहा है। आगममें अन्तिम उद्दिष्ट विरत को वानप्रस्थ नाम का तृतीय आश्रम कहा है। जघन्य श्रावक तो धर्म, अर्थ, काम, इन पुरुषार्थों को ( वर्गोंको ) पूर्णतः सेवन करते हैं। मध्यम श्रावक अर्थ काम को न्यूनतासे ( गोणतासे ) और धर्म को मुख्यता से सेवन करते हैं। तथा उत्तम उपासक केवल धर्म पुरुषार्थ का ही साधन करते हैं।



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



जघन्य श्रावक तो घर में ही भोजन पान करते हैं मध्यम श्रावक अपने घर तथा निमन्त्रण ( नौता ) आमंत्रण ( बुलावा ) मिलने पर अपनी स्वीकारता पूर्वक ( मंजुरी होने पर ) दूसरों के यहां भी भोजन करता है। दशमी प्रतिमा वाला उत्कृष्ट उपासक तो आमन्त्रयण पूर्वक स्वीकारता करने पर पुत्रादिकों के यहां अथवा अन्य श्रावकों के घर आहार करता है। उद्दिष्ट त्यागी वानप्रस्थ तो विना निमंत्रण विना बुलाने से ही भिक्षा वृत्तिसे श्रावकोंके घर जाते हैं जो श्रावक योग्य विधिसे भक्ति पूर्वक पड़गाने पर उससे आहार लेते हैं। अपने से पहली प्रतिमा का जितना चारित्र है वह सब द्वितीयादिक प्रतिमाओं में धारण पालन किया जाता है। जैसे दूसरी प्रतिमा वाला दर्शनिक प्रतिमा के चारित्रों को और अपने ( दूसरी प्रतिमा के ) चारित्रों को पाले हैं। तीसरी प्रतिमा वाला अपने पदस्थ के चारित्र को तथा पूर्व के दर्शनिक, और व्रतिक प्रतिमा के चारित्र को धारण करता है। इसी प्रकार चतुर्थी आदि सर्व प्रतिमा धारी पालतेहैं तथा महाव्रती साधु सन्या-



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



साश्रमी हो जाने पर भी अपने मूल गूण २८ को पालते हुवे श्रावक पदस्थ के ११ ही प्रतिमाओं के चारित्र को पालते हैं कोईसा भी व्रत नहीं छूटता किन्तु वृद्धिगत होता हुवा उत्तर गुणके अन्तिम अवस्था तक पहुँच कर पूर्ण चारित्रवान हो जाता है। जिसचारित्रका करना अगली प्रतिमाओंमें बताया गया है उसका पालना नीचली प्रतिमा में आवश्यक नहीं है। तथा कितनेक चारित्र जो ऊपर के हैं वे नीचे की आवस्था में नहीं करने योग्य हैं। इसका विशेष आचार विचार दिग्म्बर जैनाचार्य प्रणीत श्रावकाचारों से संहिता शास्त्रों से स्मृति शास्त्रों से पूजाकल्प प्रतिष्ठा शास्त्र और प्रथमानुयोग शास्त्रों से जाना जाता है।

अथाऽचार्य यावज्जीवत्याज्य मभक्ष्यँ कथयन्ति।

चर्म पात्र गतं तोयं, घृतं तैलं च वर्जयेत्।
नवनीतं प्रसूनादि—शाकं नाद्यात्कदाचन ॥ ६६ ॥

अन्वयः—चर्ममात्रगतम् तोयम् घृतम् तैलम् च वर्जयेत्। अथ च

॥ ५१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



नवनीतम् प्रसूनादि शाकम् कदाचन न अद्यात् ।

अर्थ —पाक्षिक श्रावक भी चर्म के वर्तन में रक्खे हुवे जल, घी, तेल, इनका खाना त्याग देवे । और मक्खन तथा पुष्प ( फूल ) वाले शाकों को कदाचित् भी न खावे । जिस रोटी दाल पूरी लड्डू शाक आदि में फुई ( फूलन ) आजावे उसे न खावे ।

अथाऽनगारेभ्यो वसतिकोपकरणानि देयानीति त्रिभिः श्लोकै राह

कलौ काले वने वासो, वर्ज्यते मुनि सत्तमैतः ।
स्थीयते च जिनागारे, ग्रामादिषु विशेषतः ॥ २२ ॥
तेषाङ्गर्गथ्यपूतानां, मूलोत्तर गुणार्थिनाम् ।
नानायति निकायानां, छद्मस्थ ज्ञान राजिनाम् । २३ ॥
ज्ञान सँयम शौचादि, हेतूनां प्रासुकात्मनाम् ।
पुस्त पिच्छक मुख्यानां, दानं दातुर्विमुक्तये ॥ २४ ॥

अन्वयः—मुनिसत्तमैः कलौ काले विशेषतः वने वासो बर्ज्यते, अतः



Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति श्री शिव कोटि आचार्य प्रणीत

# रत्नमाला समाप्ता ।

जाति भूषण
डाक्टर गुलाबचन्दजी पाटनी आनरेरी मजिस्ट्रेट
के प्रबन्ध में
श्री पाटनी प्रिंटिंग प्रेस घी मण्डी अजमेरमें मांगीलाल
जोशी ने मुद्रित किया ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

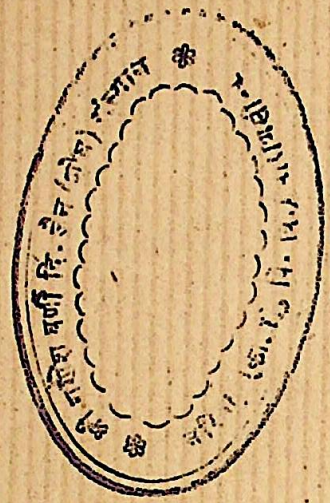

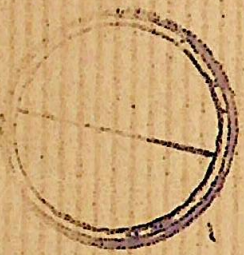

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi